

## कीड़ों से रोजगार: पर्यावरण मित्र रेशम कीट पालन एवं उत्पादन

### भाग तीन: वन तसर रेशम

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा, डॉ. नसीर मोहम्मद एवं डॉ. एन. रॉयचौधरी

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

सदियों से लोगों के दिलों पर राज करने वाला सिल्क पहनने वाले के व्यक्तित्व में चार चांद लगा देता है। इसी महत्त्व के कारण यह कभी चलन के बाहर नहीं होता है। सिल्क एक ऐसा सदाबहार फैब्रिक है, जो न सिर्फ महिलाओं की पहली पसंद है बल्कि पुरुषों में भी इस का आकर्षण कम नहीं है। सिल्क जैसी गरिमा, लावण्य और खूबसूरती किसी और कपड़े में नहीं है। प्राकृतिक एवं पर्यावरण मित्र होने के कारण यह अन्य कृत्रिम कपड़ों से बेहतर है। एक समय था जब सिल्क केवल रईसों की ही पहुंच में था, पर 1990 के शुरुआती दौर में सैंडवाइच सिल्क के आगमन ने इसे मध्यवर्गीय लोगों तक पहुंचा दिया है। सिल्क के क्षेत्र में कई प्रयोग भी किए गए और इसे कौटन, लिनेन, ऊन और यहां तक कि पोलिस्टर के साथ भी मिश्रित किया गया। इस प्रकार बने कृत्रिम फैब्रिक्स को लोकप्रियता भी मिली। सिल्क यानी रेशम, रेशमकीट द्वारा निर्मित कोसों के तंतुओं से तैयार होता है। प्राकृतिक चमक-दमक, रंगाई के लिए अनुकूल, हल्का, जाड़े में गरमी तथा ग्रीष्म में ठंडक पहुंचाना, उत्कृष्ट वस्त्र विन्यास आदि इस के कुछ विशेष गुण हैं। रेशम कीटों से रेशम प्राप्त करना एक बेहद लंबी व जटिल प्रक्रिया है। रेशम कीट एक विशेष किस्म

के कागज पर अंडे देते हैं। उन अंडों में से निकलने वाले कीड़ों को ताजा शहतूत की पत्तियां खिला कर पाला जाता है। लगभग 35 दिनों बाद ये कीड़े अपने चारों तरफ एक खोल बनाना शुरू करते हैं। जब खोल पूरी तरह बन जाता है तो कीड़ा इसी में बंद हो जाता है। फिर इन कीड़ों को मार कर ऊपरी खोल से रेशम प्राप्त किया



जाता है। 1 किलो ग्राम सिल्क बनाने के लिए 3,000 रेशमकीटों द्वारा लगभग 104 किलोग्राम शहतूत की पत्तियां खाना आवश्यक है। हर रेशम शहतूत भोजी रेशमकीटों से उत्पन्न नहीं होता। गैर शहतूती रेशम की भी व्यापक श्रेणी है। कुछ प्रमुख किस्म के रेशम हैं शहतूत, तसर, एरी तथा मूंगा। शहतूत रेशम हल्का तथा बेहद मुलायम होता है तथा बाजार में उपलब्ध रेशम के अधिकांश उत्पाद इसी से तैयार किए जाते हैं, वहीं तसर, एरी तथा मूंगा वन्य रेशम की श्रेणी में आते हैं।

भारत के लगभग हर प्रदेश में सिल्क पर बुनाई करने वाले कारीगर उपलब्ध हैं। कांचीवरम, वाराणसी, मैसूर धर्मावरम आदि भारत के पारंपरिक रेशम बुनाई केंद्र हैं तथा इन स्थानों पर बनने वाली साड़ियां अपनी उत्कृष्ट कारीगरी के लिए विख्यात हैं। पुरुषों में भी सिल्क की शर्ट, टाई व स्कार्फ का खासा क्रेज है। एक साधारण से सूट के साथ पहनी गई सिल्क की टाई व शर्ट व्यक्तित्व में चार चांद लगा देती है। आजकल घर



की साजसज्जा में भी सिल्क का बहुत चलन है। सिल्क के परदे, कुशन कवर, बेडे कवर, बेड शीट्स, टौप कवर, टेबल क्लथ विभिन्न डिजाइनों व कीमतों में उपलब्ध हैं। सिल्क की धुलाई के लिए कठोर जल व डिटरजेंट का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। इसे ड्राईक्लीन कराना ही सब से अच्छा विकल्प है, पर कच्चा सिल्क, चाइना सिल्क, इंडिया सिल्क, पोंगी, शांतुंग, तसर आदि को घर पर ही धोया जा सकता है। धुलाई के बाद कपड़े को एक टौवल में लपेट देना चाहिए ताकि इस में से अतिरिक्त नमी निकल जाए। सिल्क को हमेशा छाया में ही सुखाना चाहिए। अंतिम धुलाई के लिए ठंडे पानी में सिट्रिक या एसिटिक अम्ल की कुछ बूंदें

मिलाना चाहिए। प्रेस करते समय प्रेस का तापमान सिल्क पर सेट करना आवश्यक है तथा प्रेस करने से पहले इस पर पानी नहीं छिड़कना चाहिए अन्यथा कपड़ों पर पानी के धब्बे आ जाते हैं। यदि कपड़ा गीला है तो उसे उलटा कर के प्रेस करना चाहिए। सिल्क के वस्त्रों को सूती कपड़े में लपेट कर रखने पर ये ज्यादा समय तक सुरक्षित रहते हैं। इन्हें कभी भी प्लास्टिक की थैली या बक्से में नहीं करना चाहिए। इससे ये पीले पड़ जाते हैं या फिर इन में कीड़े लग जाते हैं। थोड़ेथोड़े समय बाद इन की तह खोल कर उलटी पलटी करते रहना चाहिए। सिल्क वस्त्रों के बीच में सिलिका की पुडिया रखना आवश्यक है और लकड़ी से सीधे संपर्क में भी नहीं रखना चाहिए। यदि आप ने काफी समय तक सिल्क के वस्त्र नहीं पहने हैं तो उन्हें हवा में फैलाकर और हल्के हाथों से ब्रश करना चाहिए। सिल्क चूंकि अन्य वस्त्रों के मुकाबले महंगा होता है। अतः इसे हमेशा किसी अच्छी व विश्वसनीय दुकान से ही खरीदना उचित होता है। इस की शुद्धता हेतु सिल्क मार्क का ध्यान रखना चाहिए।

पर्यावरण के संकट से बचने में कोकून उत्पादन का महत्वपूर्ण स्थान है। तसर उद्योग घरेलू रोजगार की दिशा में एक सार्थक प्रयास है। झारखंड के आदिवासियों की जिंदगी में रेशम उद्योग ने अहम भूमिका निभाई है। झारखंड के आदिवासी के जीवन शैली का हिस्सा रहा है वन। झारखंड की तीस जनजातियां तसर उपजाने में लगी हैं। रेशम

उत्पादन में झारखंड देश में तीसरा स्थान रखता है। लगभग साठ हजार कीट पालक रेशमदूत के रूप में अपनी आजीविका चला रहे हैं। कृषि आधारित उद्योग से लाखों परिवार को रोजगार मिला है। झारखंड में साल और आसन के पेड़ बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। इन्हीं पेड़ों पर रेशम के कीटों का भोजन मिलता है। राज्य में 75 हजार करघे चल रहे हैं। इनमें रेशम के धागे से कपड़े बुने जा रहे हैं। तसर उद्योग से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है। तसर उद्योग पर्यावरण के लिए अनुकूल है। पूरे देश में रेशम दूत का आधा हिस्सा झारखंड से है। रेशम की मांग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर है। तसर वस्त्रों का निर्यात भी झारखंड से होता है। इस निर्यात के माध्यम से प्रतिवर्ष झारखंड सरकार को पचास करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। रेशम उद्योग आज नई ऊचाइयों को छू रहा है। झारखंड में इको रेश के तसर सर्वाधिक पाये जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में झारखंड सिल्क को कूचाई सिल्क के नाम से जाना जाता है। झारखंड के रेशमी कपड़े दिल्ली, मुम्बई एवं बेंगलुरु में झारखंड सिल्क इम्पोरियम के माध्यम से बेचे जा रहे हैं। अब तो पूरे देश के हवाई अड्डों पर सिल्क इम्पोरियम खोले जाने की योजना है। झारखंड सरकार ने हैंडलूम एवं हैण्डिक्राफ्ट निर्यात कारपोरेशन, भारत सरकार से एमओयू किया है। नई दिल्ली स्थित 'कैनीड प्वाइंट' नामक संस्था के साथ एक करोड़ का व्यापार सरकार ने किया है।

झारखंड में आर्गेनिक सिल्क बन रहा है। आज रेशम उद्योग में रोजगार के अवसर बढ़े हैं। भारतीय परिधानों में रेशम से बने वस्त्र लंबे अरसे से लोकप्रिय रहे हैं। तेजी से विकसित फैशन



उद्योग में भले ही बदलावों का बोलबाला है, लेकिन आज भी रेशमी परिधानों की यहां अपनी जगह है। इससे संबंधित कोर्स भी कई संस्थानों में उपलब्ध हैं, जहां से पढाई करने के बाद युवा नौकरी या स्वरोजगार की तरफ रुख करते हैं। यही कारण है कि विज्ञान विषय के छात्रों के बीच यह पाठ्यक्रम काफी लोकप्रिय है। रेशम उत्पादन में भारत का दूसरा स्थान है। ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत बड़ी जनसंख्या इस रोजगार से जुड़ी है। यदि छात्र की रुचि इस क्षेत्र में है और बेहतर भविष्य की तलाश में हैं, तो सेरिकल्चर उनके लिए बेहतरीन कैरियर विकल्प हो सकता है।

कच्चे रेशम के निर्माण के लिए रेशम के कीड़ों का बड़े पैमाने पर उत्पादन और पालन सेरिकल्चर कहलाता है। इस शब्द का निर्माण ग्रीक शब्द सेरिकोस और अंग्रेजी शब्द कल्चर से हुआ है। सेरिकोस का अर्थ रेशम एवं कल्चर का संवर्धन (विकास) होता है। आज का दौर व्यापारिक दौर है और इस दौर में सेरिकल्चर का संबंध केवल रेशम के कीड़ों से ही संबंधित नहीं रह गया है। इसमें कई अन्य चीजों की जानकारी भी जरूरी हो गई है जैसे शहतूत की खेती और संवर्धन, कृमिकोष टेक्नोलॉजी आदि।

जिन लोगों की रुचि विज्ञान में है, उनके लिए यह क्षेत्र उपयोगी साबित हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों के वे छात्र जिन्हें कृषि की जानकारी होती है, वे अपने इस ज्ञान का लाभ सेरिकल्चर के क्षेत्र में उठा सकते हैं। किसी भी दूसरे काम की तरह इस काम में भी धैर्य, समर्पण और सहनशक्ति सफलता का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। सेरिकल्चर कुटीर उद्योग के अंतर्गत आने वाला क्षेत्र है। सरकार कई ऐसी योजनाएं चला रही है, जिससे कुटीर उद्योगों को लाभ मिल रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों का यह एक प्रमुख व्यवसाय है। अर्थव्यवस्था में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान है। आप चाहें तो स्वरोजगार भी कर सकते हैं। कम पूंजी में अधिक लाभ, सेरिकल्चर की विशेषता है और इस विशेषता के कारण ही अब शहरों में भी लोग इस व्यवसाय की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इसकी अच्छी जानकारी हासिल करने के बाद एक

सलाहकार के रूप में भी काम कर सकते हैं। सेरिकल्चर के क्षेत्र में नौकरी और स्वरोजगार दोनों के लिए पर्याप्त अवसर हैं। इसमें तकनीकी योग्यता हासिल कर लेने के बाद इस क्षेत्र में काम कर रही कंपनियों के साथ प्रोजेक्ट मैनेजर, असिस्टेंट डायरेक्टर, रिसर्च ऑफिसर, मार्केटिंग ऑफिसर, सुपरवाइजर, लैब असिस्टेंट, फार्म टेक्नीशियन आदि के रूप में काम कर सकते हैं। जिन लोगों के पास इस क्षेत्र में काम करने का कुछ वर्ष का अनुभव है उन्हें बड़ी कंपनियों में अवसर आसानी से मिल जाते हैं। सेरिकल्चर में प्रशिक्षित, एक शिक्षक के रूप में भी काम कर सकते हैं। इसमें एम एस सी सेरिकल्चर एवं एमएससी सेरिकल्चर टेक्नोलॉजी की योग्यता रखने वाले विद्यार्थियों को लाभ मिलता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि जिनकी रुचि इस क्षेत्र में है और बेहतर भविष्य की तलाश में हैं, जहां नौकरी के साथ-साथ स्वरोजगार का भी विकल्प मिले, तो यह क्षेत्र सबसे उत्तम है।

एक अनुमान के मुताबिक, भारत में तकरीबन चालीस लाख लोग रेशम उत्पादन से जुड़े हैं, वहीं लगभग डेढ़ लाख लोग रेशम धागाकरण से। उत्पादन का अस्सी प्रतिशत अकेले हैंडलूम क्षेत्र द्वारा उपयोग में लाया जाता है। बाकी बीस प्रतिशत का उपयोग विभिन्न राज्यों के छह हजार पावरलूम द्वारा। अभी तक सिल्क उत्पादन में जापान और चीन का ही प्रभुत्व रहा है। ये दोनों देश मिलकर आज भी तकरीबन पचास प्रतिशत

सिल्क का उत्पादन करते हैं। भारत में प्रशिक्षित युवाओं के इस क्षेत्र में आने से इसके उत्पादन में इजाफा हो रहा है। तसर एवं इरी सिल्क के मामले में देश अग्रणीय है। भारत में एक ओर जहाँ रेशम उत्पादन की अपार सम्पदा के साथ साथ पर्याप्त साधन उपलब्ध हैं वहीं दूसरी ओर तसर उत्पादित वस्तुओं एवं वस्त्रों की विदेशों में माँग में निरन्तर वृद्धि हो रही है। देश में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करके आदिवासियों की इस पुरातन परम्परा में विशिष्ट परिवर्तन करके इसे उद्योग का स्वरूप प्रदान किया गया है। आज आवश्यकता इस बात की है कि इसे सुनियोजित तरीके से उनके रहन सहन को प्रभावित किये बिना उपयोग किया जाना चाहिए ताकि इस उद्योग का संतुलित विकास किया जा सके।



हमारा देश विविध वातावरण एवं पर्यावरण से समृद्ध होने के कारण तसर रेशम उत्पादन में सम्पन्न है। यहाँ जलवायु के आधार पर दो प्रकार के रेशम का उत्पादन किया जाता है। गर्म जलवायु में पाली जानेवाली तसर को उष्णकटिबंधीय तथा शीत जलवायु में पाली जाने वाली प्रजाति को शीतोष्ण कटिबंधीय तसर कहा

जाता है। उष्णकटिबंधीय तसर को ट्रॉपिकल तसर के नाम से भी जाना जाता है जो कि एन्थीरिया माइलिटा नामक कीट प्रजाति से बनता है। उष्णकटिबंधीय तसर उत्पादन करने वाले क्षेत्र की जलवायु आर्द्र होती है। यह तसर मुख्य रूप से दो प्रकार से पाया जाता है। 1. साल वृक्ष आधारित तथा 2. टर्मिनेलिया वृक्ष आधारित शीतोष्ण तसर को टेम्परेट तसर भी कहा जाता है जो कि ए. प्रॉयली नामक कीट से बनता है। इस तसर से उत्पादित धागा, उष्णकटिबंधीय तसर से उत्पादित धागे से महीन होता है।

भारत एक कृषिप्रधान देश है तथा इसकी अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवासरत होकर मुख्यतः आजीविका के लिए कृषि तथा वनों पर ही निर्भर है। गाँवों में बढ़ती आबादी तथा रोजगार के कम होते अवसर से गाँवों से शहरों की ओर पलायन होता है। इस पलायन को रोकने के लिए गाँवों में ही उपलब्ध जल, जंगल और जमीन का उपयोग करना आवश्यक है ताकि गाँवों में ही रोजगार के साधन उपलब्ध हो सकें। तसर रेशम उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराने तथा क्षेत्र के विकास में एक बेहतर विकल्प साबित हो सकता है।

तसर रेशम कृमि के प्रमुख भोज्य पौधे साज, अर्जुन आदि पर कृमिपालन करके अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। वृक्षों की इसी उपयोगिता के कारण तसर कृमिपालक न तो इन्हें काटते हैं न ही किसी को काटने देते हैं अपितु इन्हें संरक्षित

रखते हैं। इस प्रकार रेशम उद्योग वनों के संरक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तसर खाद्य वृक्षों जैसे अर्जुन, साजा का वृक्षारोपण विशेष विधि अपनाकर बंजर भूमि में किया जा सकता है इससे भूमि का क्षरण रुकता है, भू-जल स्तर बढ़ता है तथा भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। इस प्रकार बंजर भूमि में सुधार होता है। इससे जैव विविधता को बढ़ाने में सहायता मिलती है। जैव और अजैव घटकों के बीच समुचित संतुलन को पर्यावरण संतुलन कहा जाता है। बढ़ते आधुनिकीकरण के युग में ये दोनों घटक काफी प्रभावित हुए हैं। तसर रेशम उद्योग पर्यावरण संतुलन में सहायक होता है क्योंकि इसमें वृक्षारोपण किया जाता है। पौधे वायु को शुद्ध करने में भी सहायक होते हैं। कोसा कृमिपालन का कार्य वनों के आस पास रहनेवाले मुख्यतः आदिवासी समुदाय द्वारा किया जाता है जो अपने जीवन यापन के लिये मुख्यतः वनोपज के संग्रहण और उसके उपयोग पर निर्भर होते हैं। इस उद्येश्य से तसर रेशम उद्योग इनके लिए काफी लाभदायक है। आदिवासी समुदाय के सदस्यों के पास कृषि योग्य भूमि अत्यंत कम होती है तथा जो उपलब्ध होती है वह असिंचित तथा अनुर्वरक होती है इसलिए वे स्वयं तसर खाद्य वृक्षों का पौधारोपण न करते हुए वनों में उपलब्ध अर्जुन, साजा पौधों पर कोसा कृमिपालन का कार्य करते हैं। इसके साथ ही वनों से नैसर्गिक रूप से उत्पादित तसर कोसा का संग्रहण भी करते हैं।

### तसर रेशम कीट का जीवन चक्र

तसर कृमि के अण्डा से माँथ तक तसर रेशम कृषि का जीवन चक्र विकास की एक अनुभूत कहानी है। तसर रेशम कृमि एक होलोमेटाबोलस कृमि है जो अपना शरीर अनेक रूपों में बदलता है। इसका जीवन चक्र चार अवस्थाओं में अण्डा, लारवा (इल्ली), संखी (प्यूपा) तथा शलभ (माँथ) से पूरा होता है। तसर रेशम कृमि वर्ष में 2-3 जीवन चक्र पूरा करते हैं अर्थात् इसका एक वर्ष में दो-तीन बार कृमिपालन कर कोसा प्राप्त किया जा सकता है।

तसर रेशम की चीन की तसर प्रजाति विश्व में सबसे अधिक रेशम उत्पादन करने वाली प्रजाति है। इसके अलावा जापान की तसर प्रजाति तथा तथा भारत की तसर प्रजाति होती है। चीन तथा जापान की तसर कीट प्रजातियाँ मुख्यतः ओक पौधों की पत्तियाँ खाती हैं जबकि भारत की तसर कीट प्रजातियाँ टर्मिनेलिया तथा अन्य पौधों की पत्तियाँ खाती हैं।

तसर रेशम कृमि एक बहुभक्षी कृमि है अर्थात् वह अनेक प्रकार की पत्तियाँ खाकर अपना जीवन निर्वाह करता है। इस कृमि का मुख्य भोजन साज तथा अर्जुन पौधों की पत्तियाँ हैं। इन पत्तियों को खाकर वह उच्च कोटि का रेशम उत्पादन करता है इसलिये इसे प्रमुख खाद्य पौधा भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त यह कृमि साल, सिद्धा, जामुन, बेर आदि अनेक पौधों की पत्तियाँ भी खाता है जिन्हें सहायक खाद्य पौधा कहा जाता है लेकिन

इन पर पोषित कृमि द्वारा उत्पादित रेशम की गुणवत्ता कम होती है। व्यावसायिक कृमिपालन की दृष्टि से साजा तथा अर्जुन पौधों की पत्तियाँ ही तसर रेशम कीट का मुख्य आहार पौधा है। इसका पौधारोपण सघन रूप से विकसित किया जा सकता है जो कृमिपालन की दृष्टि से उत्तम है। वन क्षेत्रों में साल वृक्षों के अलावा अन्य पौधों पर भी तसर रेशम प्राकृतिक रूप से काफ़ी संख्या में उत्पादित होते हैं। रेशम उत्पादन की दृष्टि से अर्जुन, साल ज्यादा उपयुक्त माना गया है क्योंकि इसमें अधिक पोषक गुण होते हैं। तसर रेशम कृमि मुख्य भोज्य पौधों के अभाव में सहायक भोज्य पौधों की पत्तियाँ खाते हैं लेकिन इस पर पाले जाने से तसर कृमि कोसा या कोकून बनाने के पूर्व ही अधिकांशतः या तो मृत हो जाते हैं या फिर उनकी लारवा की अवधि बढ़ जाती है। रेशम भी अच्छा नहीं बनता है जिसके फलस्वरूप कृमिपालक को कम लाभ प्राप्त होता है। अतः सहायक खाद्य पौधों पर कृमिपालन करना व्यावसायिक दृष्टि से लाभदायक नहीं होता है। तसर कृमिपालन का कार्य व्यावसायिक रूप से साजा तथा अर्जुन के पौधों पर ही किया जाता है जो उष्णकटिबंधीय वनों में बहुतायत में पाये जाते हैं। वनों में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध साजा तथा अर्जुन के पौधों का वितरण होता है तथा वे विभिन्न आकार तथा प्रकार के होने के कारण उनकी पत्तियों की मुलायमता, परिपक्वता तथा गुणवत्ता में जगह जगह अंतर पाया जाता है। इस

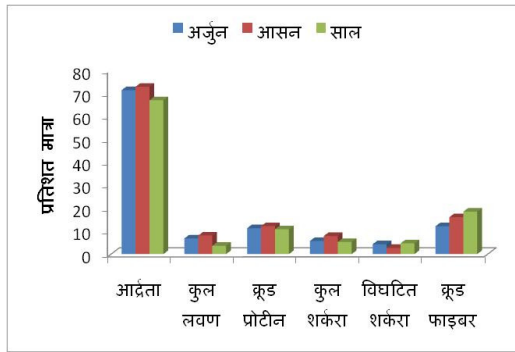
कारण इन पर व्यवस्थित कृमिपालन नहीं हो पाता है। वृक्ष की पत्तियाँ समाप्त हो जाने पर कृमियों का अन्य वृक्षों पर स्थानांतरण भी कठिन हो जाता है। कृमिपालन के दौरान यदि पर्याप्त सावधानी नहीं रखी जाती है तो कृमि भोजन जनित रोग से ग्रस्त होकर मृत हो जाते हैं या रेशम कम उत्पादित करते हैं। उपरोक्त समस्याओं को दूर करने हेतु सघन पौधारोपण प्रणाली की विधी विकसित की गई है। इसकी सहायता से पत्ती उत्पादन में सुधार के साथ इस पर नियंत्रित कृमिपालन भी सरलता से किया जा सकता है। इससे रेशम उत्पाद में वृद्धि होती है तथा कृमिपालक को अधिक आय प्राप्त होती है। अर्जुन तथा साजा पौधों पर कृमिपालन करने से रेशम उत्पादन लगभग बराबर ही होता है इनमें अंतर यह है कि अर्जुन पौधों की वृद्धि दर तीव्र होती है तथा वह तीन चार वर्षों में ही कृमिपालन हेतु तैयार हो जाते हैं जबकि साजा पौधों की वृद्धि दर काफ़ी धीमी है तथा वह चार पाँच वर्षों में ही कृमिपालन हेतु तैयार हो पाते हैं।

अर्जुन तथा साजा पौधों का रोपण सभी प्रकार की भूमि तथा जलवायु में किया जा सकता है। इसके लिए हल्की बालुई मिट्टी जो थोड़ा अम्लीय हो अधिक उपयुक्त होती है। लाल मुरुम वाली भूमि तथा काली मिट्टी भी उपयुक्त होती है। यह पौधे अम्लीय भूमि में आसानी से उगते हैं।

इन पौधों का कायिक प्रजनन गूटी विधी द्वारा किया जाता है। इसमें मातृ पौधे की एक से डेढ़



मीटर लम्बी अंगुली की मोटाई की शाखा जिस स्थान पर मुख्य शाखा से जुड़ी होती है उसके सिरे में आधा से एक सेमी. की छाल इस प्रकार से निकालते हैं कि जाईलम ऊतक को क्षति ना पहुँचे। इस छिले हुए भाग के अगले सिरे को सिराडिक्स वी 3 के घोल से उपचारित करके मिट्टी, गोबर तथा काई के गीले सम्मिश्रण से लपेटकर पॉलीथिन से ढंक कर बांध देते हैं। एक से डेढ माह में कृत्रिम जड़ दिखाई देने लगती है। इस समय गूटी को मातृ वृक्ष से पृथक कर प्रक्षेत्र में प्रत्यारोपित कर सकते हैं।



### तसर रेशम कृमि के खाद्य पौधों के पोषक गुण

तसर खाद्य पौधों अर्जुन तथा साजा का प्रबंधन मुख्यतः बीज द्वारा किया जाता है। बीज द्वारा प्रजनन की विधि सबसे आसान है इसमें सबसे पहले नर्सरी पौध तैयार की जाती है तथा इससे प्राप्त पौधों को खेत में लगाया जाता है। अर्जुन तथा साजा का बीज कड़े आवरण से घिरा रहता है जिसमें अंकुरण धीरे धीरे अनियमित तथा कम होता है। अतः बीज में अंकुरण बढ़ाने तथा नर्सरी में स्वस्थ पौधा तैयार करने के लिए पॉलीथिन में पौधे तैयार करने के लगभग तीन माह

पश्चात पौधारोपण प्रक्षेत्र में प्रतिरोपित किया जाता है।

### प्रमुख बीमारियाँ एवं उनका नियंत्रण

तसर रेशम कृमि के मुख्य खाद्य पौधों अर्जुन तथा साजा को अनेक प्रकार की बीमारियाँ प्रभावित करती हैं। इससे पौधों की पत्तियों की गुणवत्ता के साथ साथ उनकी उत्पादकता में भी कमी आ जाती है जिससे वे तसर कीट पालन के लिए उपयुक्त नहीं रह पाती हैं। इसके परिणामस्वरूप कीटपालन क्षमता में कमी आ जाती है। इनमें प्रमुख रूप से निम्न बीमारियाँ प्रभाव डालती हैं।

**चूर्णित आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू):** अर्जुन तथा साजा पौधों में पाउडरी मिल्ड्यू बीमारी फाइलेक्टोनिया टर्मिनेली नामक फफूँद से आती है। अक्टूबर -नवम्बर माह में इस बीमारी से प्रभावित पौधों की पत्तियों की निचली सतह पर सफ़ेद पाउडर जैसे धब्बे दिखाई देते हैं जो धीरे धीरे काले धब्बों में परिवर्तित हो जाते हैं। इसके बाद प्रभावित पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती हैं। इस रोग के नियंत्रण हेतु 0.03% कैरथेन या 0.2% सल्फेक्स का 8.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से दस दिन के अंतराल पर तीन बार करना चाहिए।

**काली करधनी गाँठ रोग (ब्लैक नोडल गर्डलिंग):** यह बीमारी अर्जुन तथा साजा की पत्तियों पर बेसिडियोमाइसिस कुल की फफूँद यूरिडो टर्मिनेली द्वारा होती है। सितम्बर माह में पौधों की शाखाओं में पत्ती निकलने वाली गाँठें काली



पड़ने लगती है। इसके बाद पूरी पत्ती काली पड़ जाती है तथा वह कृमि के खाने के लिए अनुपयोगी हो जाती है। इससे लगभग दस प्रतिशत पत्तियों का नुकसान होता है। इस बीमारी से प्रभावित पत्तियों को तोड़कर अलग कर देना चाहिए। 0.02 बावेस्टीन दवा का छिड़काव पन्द्रह दिन के अंतराल में करना चाहिए।

पर्ण चित्ती (लीफ स्पॉट): यह बीमारी मुख्यतः साजा की पत्तियों पर पेस्टेलोसियोप्सिस पायेरम फफूंद जो अल्टरनिरिया प्रजाती के अंतर्गत आते हैं से आती है। इसका प्रकोप वर्षा ऋतु में अधिक दिखाई देता है। प्रभावित पौधों की पत्तियों की निचली सतह पर सफेद पीले धब्बे तथा ऊपरी सतह पर गहरे भूरे रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं तथा बाद में प्रभावित पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इससे लगभग दस प्रतिशत पत्तियों का नुकसान होता है। इसकी रोकथाम हेतु 0.05% ब्लाइटाक्स या 0.15 प्रतिशत जिनेब या बोरिडियाक्स का मिश्रण छिड़कना चाहिए।

पर्ण कुंचन (लीफ कर्ल): यह बीमारी भूमि में कॉपर तत्व की कमी से होती है। अधिक वर्षा होने पर अर्जुन तथा साजा की मुलायम पत्तियाँ मध्य सिरे से जुड़कर नाव के आकार की हो जाती हैं। हवा के झोंकों के साथ ये पत्तियाँ शाखाओं पर झूलती नजर आती हैं तथा धीरे-धीरे कड़ी होकर अंत में सूखकर गिर जाती हैं। इससे प्रभावित पौधों की लगभग तीस से चालीस प्रतिशत पत्तियाँ कृमिपाल के योग्य नहीं रह जाती हैं।

इसकी रोकथाम हेतु पौधों पर कीटनाशक का छिड़काव कर इस पर नियंत्रण पाया जा सकता है। 125 पी. पी. एम. तृतीया घोल (कॉपर सल्फेट), 0.5 प्रतिशत कॉपर आक्सीक्लोराइड का छिड़काव करने से इसे सत्तर से अस्सी प्रतिशत तक नियंत्रित किया जा सकता है।

पौधों का आर्द्र पतन (डेम्पिंग ऑफ़ सीडलिन्स):

यह बीमारी पाइथियम अफानोडेरमटम के कारण होती है तथा इससे नर्सरी के पौधों को ज्यादा क्षति पहुँचती है। इस बीमारी के कारण बीज के पत्रों की ऊपरी सतह पर काले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जो बाद में पूरी पत्ति पर फैल जाते हैं। इसमें प्रांकुर में जलने जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। इससे अर्जुन के पौधों को बीस से तीस तथा साजा के पौधों को तीस से पैंतीस प्रतिशत तक नुकसान होता है। इसकी रोकथाम हेतु पौधारोपण करने के पूर्व कलमों पर 0.2 प्रतिशत मैन्कोजेब के साथ साथ 0.25 प्रतिशत थीरम या 0.02 प्रतिशत सीरेसन या 0.25 प्रतिशत केप्टान फफूंदी नाशक का छिड़काव प्रभावी होता है।

स्तम्भ प्रणव (स्टेम केन्कर): यह बीमारी एस्कोमाइसिटीसिज कुल के निकट्रीन प्रजाति के फफूंद द्वारा फैलती है। इसमें पौधे के तने एवं नई शाखाओं पर ट्यूमर समान वृद्धि विकसित हो जाती है जो धीरे धीरे पूरे तने पर फैल जाती है। इससे प्रभावित होने पर तना एवं शाखाएं ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती हैं। इसकी रोकथाम हेतु संक्रमित हिस्से की कंटाई-छंटाई करके इस पर नियंत्रण पाया जा सकता है। प्रभावित भाग पर बोरिडियाक्स मिश्रण चूना, कॉपर सल्फेट, पानी: 4, 1, 50 के अनुपात में मिलाकर लगाना चाहिए। इसमें जिन्कॉप 0.3 प्रतिशत का छिड़काव भी प्रभावी होता है।

**रूट रॉट बीमारी:** इस बीमारी से प्रभावित साजा पौधों की जड़ें गलने लगती हैं जिससे पौधा मृत हो जाता है। साथ ही जड़ों को पार्श्व जड़ें कमजोर तथा लम्बी विकसित हो जाती हैं जिससे संक्रमण और अधिक फैलता है। इसकी रोकथाम हेतु बीमारी से प्रभावित या मृत पौधों को हटाकर जला देना चाहिए। प्रभावित पौधों के चारों ओर ट्रेन्च खोदकर इसे अलग किया जाना चाहिए ताकि समीपवर्ती पौधे संक्रमित न हो सकें।

**मॉलीब्डनम की कमी:** मॉलीब्डनम तत्व की कमी होने पर पौधों की पत्तियाँ कमजोर हो जाती हैं। इसे कम करने के लिए अमोनियम मॉली ब्लेडेट डेढ से दो किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से पौधरोपित क्षेत्र में डालना चाहिए।

**वुड रॉट बीमारी:** यह बीमारी कीटोमियम, फाइलोफ्लोरा इत्यादि से होती है। इससे प्रभावित मुख्य तना आधार भाग से सड़ने लगता है। इससे पौधों की शाखाएँ सूखने लगती हैं और अन्त में पौधा मृत हो जाता है। इस बीमारी के नियंत्रण के लिए प्रभावित भाग पर बोरिडियाक्स मिश्रण चूना, कॉपर सल्फेट, पानी: 4:1:50 के अनुपात में मिलाकर लगाना चाहिए।

**लीफ ब्लाइट:** यह बीमारी फ्यूजेरियम प्रजाति के फंफूद से होती है। इसमें पत्ती के किनारों के लेमिना पर छोटे-छोटे भूरे से राख के रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। इसके नियंत्रण के लिए 0.5 कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या 0.15 प्रतिशत जेनेब या बोरिडिक्स मिश्रण का 4:4:50 के अनुपात में पन्द्रह दिनों के अंतराल पर दो से तीन बार छिड़काव करना चाहिए।

**लीफ रस्ट:** पौधों में यह बीमारी बेसीडोमाइसिस फंफूद से आती है। इसमें पत्ती की ऊपरी सतह पर क्लोरोसिस के समान तथा निचली सतह पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं। इससे प्रभावित

पत्तियाँ सूखकर गिर जाती हैं। इस पर नियंत्रण के लिए 0.2 प्रतिशत सल्फर या 0.2 प्रतिशत मैन्कोजेब का छिड़काव करना चाहिए। तसर खाद्य पौधों की रोकथाम समय समय पर करना अतिआवश्यक है। इनमें लगने वाली बीमारियों का रासायनिक नियंत्रण करने की स्थिति में दवा का छिड़काव किसी कृषि विशेषज्ञ / रेशम विशेषज्ञ के मार्ग दर्शन में किया जाना उचित होता है।

### नाशी कीट एवं उनका नियंत्रण

तसर रेशम कृमियों के मुख्य भोज्य पौधों अर्जुन एवं साजा पर अनेक प्रकार के नाशक कीट का प्रकोप समय-समय पर देखा गया है जिससे पौधों की पत्तियों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है जिसका सीधा असर तसर रेशम उत्पादन पर पड़ता है। इन नाशक कीटों द्वारा पौधों को पहुँचाये जाने की मात्रा का अनुमान मौसम तथा स्थान के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है। नाशक कीटों से पौधों की पत्तियों को सामान्यतः पच्चीस तथा इसके प्रकोप की तीव्रता अधिक होने पर 75 प्रतिशत तक नुकसान पहुँचता है। अतः इन नाशक कीटों का नियंत्रण अति आवश्यक है। तसर खाद्य पौधों को हानि पहुँचाये वाले कुछ प्रमुख हानिकारक कीट एवं उनके नियंत्रण के उपाय निम्न हैं।

**गॉल कीट:** गॉल कीट की अनेक प्रजातियाँ तसर



खाद्य पौधों को नुकसान पहुँचाती है । इनके अर्भक (निम्फ) पत्तियों के ऊतक को भेदकर उसपर अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं । इससे प्रभावित अर्जुन तथा साजा पौधों की पत्तियों की ऊपरी तथा निचली दोनों सतहों पर पीले रंग के चेचक नुमा गाँठ या उभार बन जाते हैं जिससे उनकी वृद्धि रुक जाती है । उसके पोषक तत्व समाप्त होने लगते हैं तथा पत्तियों की गुणवत्ता कम होने लगती है जिससे पत्तियों का प्रभावित हिस्सा तसर कृमि के खाने के अनुपयुक्त हो जाता है । इसका प्रकोप मार्च से सितम्बर माह तक रहता है । प्रकोप की सामान्य अवस्था में 15 से 20 तथा अधिक तीव्र होने पर 80 से नब्बे प्रतिशत पत्तियों को नुकसान पहुँचता है । इसके नियंत्रण हेतु तसर खाद्य पौधों की फरवरी –मार्च माह में कटाई-छंटाई के साथ मार्च-प्रैल माह में पौधरोपण क्षेत्र की गुड़ाई करनी चाहिए । मई-जून माह में गॉल कीट से प्रभावित नई पत्तियों तथा जुलाई-अगस्त माह में प्रभावित पुरानी पत्तियों को तोड़कर जला देना चाहिए ताकि संक्रमण ना फैले । पौधों में जब नई पत्तियाँ (मार्च माह के अन्त में) आना शुरू होती हों तब मोनोक्रोटोफॉस 0.09 प्रतिशत या डायमथोपेट 0.09 प्रतिशत कीटनाशी घोल (1 लीटर पानी में 3 मि. मि. दवा) को पन्द्रह दिनों के अन्तर पर दो से तीन बार छिड़कना चाहिए । इसके अलावा 0.03 प्रतिशत डिमेक्रान या 0.09 प्रतिशत रोगर-30 ईसी (1 लीटर पानी में 30 मि.लि. का घोल) का डेढ़ लीटर घोल प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव 15 -20 दिन के अंतर पर तीन बार करना चाहिए ।

तना छेदक: अनेक लेपिडीप्टेस तथा कोलिओप्टेरा कीट प्रजातियों के तना छेदक कीट अर्जुन तथा

साजा के पौधों के तने को भेदकर इसके रस परिवहन में बाधा पहुँचाते हैं । जिससे इनको नुकसान होता है । इनमें प्रमुख कीट गोल सिर तना छेदक, चपटा सिर तना छेदक तथा शाखा छेदक है । इसके अतिरिक्त सामान्य स्टेम बोरर भी हैं जिसके लारवा अर्जुन तथा साजा के तनों को छेदकर उन्हें नुकसान पहुँचाते हैं । स्टेम बोरर कीटों की इल्लियाँ पौधे के तने या शाखाओं में छेदकर भीतर प्रवेश करती हैं जिससे पौधा कमजोर होने लगता है तथा सूख जाता है एवं अन्त में मृत हो जाता है । तना छेदक जिस स्थान पर पौधों को प्रभावित करता है उस स्थान पर तने में छिद्र दिखाई देता है जिसके आस पास काला या भूरा लिसलिसा चिपकने वाला पदार्थ जमा रहता है । सामान्य परिस्थिति में 5 से दस प्रतिशत तथा प्रकोप अधिक होने पर 80 प्रतिशत तक पत्तियाँ प्रभावित होती हैं । इसका प्रकोप सितम्बर-अक्टूबर माह में होता है । इसके नियंत्रण हेतु इस कीट के वयस्क कीड़ों को



एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए । पौधों के संक्रमित हिस्सों को खरोंचकर उससे तना छेदक की इल्लियों को एकत्र जर उन्हे नष्ट कर देना चाहिए । अक्टूबर-नवम्बर माह में पौधों के तनों को 10 प्रतिशत गामा बी एच. सी. या मिथाइल पैराथियान तथा चूनेर के घोल को 1:4 के अनुपात में मिलाकर लेप कर देना चाहिए ।

मोनोक्रोटोफॉस 0.07 प्रतिशत या डेमिक्रान या फासफोमिडान 0.05 – 0.09 प्रतिशत घोल या पेट्रोल या केरोसीन को रुई में भिगोकर तार या लकड़ी की सहायता से तना छेदक द्वारा बनाये गये छिद्र में डालकर उसे मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए। इसका छिड़काव तने के ऊपर मई-जून माह में करना भी प्रभावी होता है।

**पत्ती झाड़क कीट (लीफ डिफॉलिएटर्स):** बालयुक्त इल्ली, इस कीट का वैज्ञानिक नाम नोटोलोफस एन्टिका है। इसकी इल्लियों से प्रभावित तसर खाद्य पौधों की पत्तियाँ कटी-फटी दिखाई देती हैं। इसका प्रकोप अप्रैल से नवम्बर माह में दिखाई देता है लेकिन अधिक प्रकोप अगस्त-सितम्बर माह में होता है। इसके सामान्य प्रकोप की अवस्था में आठ से दस प्रतिशत तथा प्रकोप अधिक होने पर 80 प्रतिशत तक पत्तियाँ प्रभावित होती हैं जिससे कृमिपालन हेतु कम मात्रा में पत्तियाँ उपलब्ध होती हैं। इसके नियंत्रण हेतु कंटाई-छँटाई की समय सारणी में परिवर्तन करके इसका नियंत्रण किया जा सकता है। इस कीट के अण्डों को सर्दी के मौसम में तथा इल्लियों को अप्रैल-नवम्बर माह में एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए। 0.01 से 0.02 प्रतिशत नुआन या 0.09 प्रतिशत डायमथोएट या 0.03 से 0.09 प्रतिशत मैलाथियान कीट नाशक घोल का 15 से 20 दिन के अंतराल पर तीन बार पत्तियों पर छिड़काव करना चाहिए। यह छिड़काव कृमिपालन के प्रारम्भ होने के 20 से 25 दिनों पहले समाप्त हो जाना चाहिए।

**गुबरैला (मई जून बीटल):** इस कीट का वैज्ञानिक नाम एनामाला ब्लेंकार्डी है। इस कीट से प्रभावित पौधों पर रात में काले भूंग कीट दिखाई

देते हैं। इसके द्वारा पत्ती खाने से पत्ती में कटाव दिखाई देता है जिससे पत्ती की गुणवत्ता एवं



उत्पादन दोनों प्रभावित होते हैं। इस कीट के वयस्क मई-जुलाई माह में दिखाई देते हैं। सामान्य प्रकोप की स्थिति में आठ से दस प्रतिशत तथा प्रकोप अधिक होने पर चालीस प्रतिशत तक पत्तियाँ प्रभावित होती हैं। इल्लियों द्वारा पौधों की जड़ खाने से पौधा कमजोर हो जाता है। इनके नियंत्रण हेतु फरवरी-मई तथा जुलाई-अगस्त माह में तसर खाद्य पौधों के चारों ओर हल्की गुड़ाई करके मिट्टी पलटना चाहिए। पैराथियान या गामा बी. एच. सी. 82 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर या फॉरेट कीटनाशक 2.5 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से मिट्टी में छिड़कना चाहिए। मई-जून माह में रात्रि में पौधारोपण स्थान में रोशनी करके इसके वयस्क कीड़ों को एकत्रित करके मार देना चाहिए। 0.09 प्रतिशत डायमथोएट कीटनाशक दवा का 10 से 15 दिन के अंतराल पर तीन बार पत्तियों पर छिड़काव करना चाहिए। **लाल भूंग गुबरैला:** इससे कीट से प्रभावित पौधों पर लाल-भूरे रंग के भूंग दिखाई देते हैं। इस कीट के द्वारा पत्तियाँ

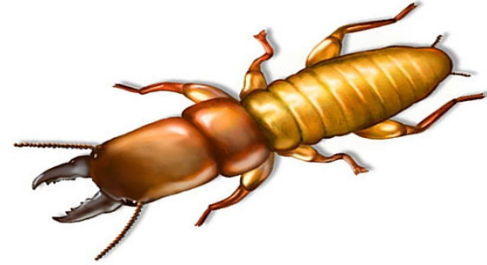
खाने से कटाव दिखाई देता है। इसके शिशु कीट द्वारा जड़ों को भी नुकसान पहुँचाया जाता है। इसका प्रकोप जुलाई-अगस्त माह में होता है। सामान्य प्रकोप की अवस्था में सात से आठ प्रतिशत तथा प्रकोप अधिक होने पर 30 से 35 प्रतिशत तक पत्तियों को नुकसान पहुँचता है। इसके नियंत्रण हेतु जुलाई-अगस्त तथा फरवरी-मई माह के मध्य पौधों के चारों तरफ गुड़ाई करके मिट्टी में मिथाइल पैराथियान या गामा बी.एच.सी. 62 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर या फोरेट कीटनाशक 2.5 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से मिलाना चाहिए। जून-नवम्बर माह के मध्य पौधों से कीट को एकत्रित करके मार देना चाहिए। डाइमथोएट कीटनाशक 0.09 प्रतिशत को पन्द्रह दिन के अंतराल पर तीन बार पत्तियों पर छिड़कना चाहिए।



**भूरा घुन (माइलीसिरस):** इस कीट का प्रकोप होने पर पौधों पर भूरे रंग के कीट दिखाई देते हैं तथा इससे प्रभावित पत्तियाँ जाल के समान दिखाई देती हैं। इनका प्रकोप जुलाई-नवम्बर माह में होता है। इससे 15 से 20 प्रतिशत पत्तियों का नुकसान होता है। इस कीट द्वारा पत्तियों का हरा भाग (पर्ण हरित) खाने से वह

खाने के अयोग्य हो जाती हैं। इस कीट के शिशु कीट द्वारा पौधों की जड़ों को कुतरने से पौधा कमजोर हो जाता है। इसके नियंत्रण हेतु जून-नवम्बर माह तक प्रौढ़ कीटों को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए। पौधों के आस पास गुड़ाई करके मिथाइल पैराथियान या गामा बी.एच.सी. 62 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से मिलाना चाहिए। डाइमथोएट कीटनाशक 0.09 प्रतिशत या 0.2 प्रतिशत नुआन को पन्द्रह दिन के अंतराल पर तीन बार पत्तियों पर छिड़कना चाहिए।

**दीमक (टर्माइट्स):** दीमक पौधों के तने को काफी क्षति पहुँचाती है जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा पौधे मृत हो जाते हैं। इनके



नियंत्रण हेतु 5 प्रतिशत क्लोरेडेन का छिड़काव 20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी या पौधों के चारों तरफ करना चाहिए।

कीटनाशक का प्रयोग कीट विज्ञानी या रेशम वैज्ञानिक की देखरेख में ही करना चाहिए। इसके प्रयोग के पश्चात पौधों पर कृमिपालन, कीटनाशक की सुरक्षा अवधि के पश्चात ही करना चाहिए। कीटनाशक के उपयोग से नाशक कीट को नियंत्रण की अपेक्षा जैविक उपचार अधिक लाभदायक होता है। जैविक उपचार पर्यावरण सामंजस्य में भी सहायक होता है।